जाति व्यवस्था : अर्थ एंव विशेषताएं

जाति शब्द की उत्पत्ति संस्कृति के शब्द जातः से हुई, जिसका अर्थ हैं 'जन्म'। इसका तात्पर्य है कि जिस समुह की सामाजिक स्थिति का निर्धारण जन्म के आधार पर होता है, उसे जाति कहते हैं। यह जाति व्यवस्था भारत में पायी जाती है जो पवित्रता और अपवित्रता संबधी विश्वासों के आधार पर विकसित होने वाला सामाजिक स्तरीकरण का एक विशेष रूप हैं।

केतकर, ने 'History of caste in india' में लिखा हैं– "जाति एक ऐसा सामाजिक समूह है जिसकी सदस्यता उन्ही लोगों को मिलती है जिन्होनें उसी समूह में जन्म लिया हो तथा जिसकी सदस्यों पर एक दृढ़ सामाजिक नियम के द्वारा अपने समूह के बाहर विवाह करने पर नियंत्रण लगा दिया जाता हैं।"

चार्ल्स कूले के अनुसार "जब एक वर्ग पूर्णतया वंशानुक्रम पर आधारित होता है, तब हम उसे जाति कहते हैं।"

इन परिभाषाओं के अतिरिक्त जाति को समझने के लिए इसकी विशेषताओं को समझना आवश्यक हैं। नीचे वर्णित जाति की विशेषताओं में पहली दो विशेषताए इसकी संरचना को स्पष्ट करती है और शेष अन्य का संबध उन नियमों और प्रतिबन्धो से है जिसे जाति की सांस्कृतिक विशेषताएं कहते हैं।

जाति की विशेषताएं

खण्डात्मक विभाजन : हिन्दू समाज में खण्डों का यह विभाजन कठोर है, जिसमें परिवर्तन की अनुमति नही हैं।

संस्तरण : इन सभी खण्डों में ऊँच-नीच का एक स्पष्ट संस्तरण है, जिसे बनाए रखना आवश्यक हैं।

अनुवांशिक सदस्यता : व्यक्ति जिस जाति में जन्म लेता, आजीवन उसी का सदस्य बना रहता है, चाहे उसकी आर्थिक, राजनीतिक जीवन में कितना भी परिवर्तन ना हो जाए।

अन्तर्विवाह : जाति का सबसे कठोर नियम अपनी ही जाति में विवाह करना है, इसे अन्तर्विवाह का नियम (Rule of Endogamy) कहते हैं।

पवित्रता और अपवित्रता की धारणा : सेनार्ट और डयूमा ने इसे एक प्रमुख आधार माना है, इसमें जन्म और व्यवसाय के आधार पर अपवित्र माने गई जातियों को उच्च एंव पवित्र मानी गई जातियों से सामाजिक सम्पर्क पर कठोर प्रतिबन्ध लगाया गया हैं।

खान-पान पर प्रतिबन्ध : इसका संबध भी पवित्रता एंव अपवित्रता की धारणा से है, जिसके अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति अपनी ही जाति द्वारा बनाए गए भोजन का ग्रहण करेगा, परन्तु उच्च जातियाँ अन्य जातियों से पक्का भोजन ग्रहण कर सकती हैं। सबसे ज्यादा प्रतिबन्ध शूद्र जातियों पर लगाये गए ।

व्यवसायिक विभाजन : प्रत्येक जाति का व्यवसाय पूर्व निर्धारित है जिसे करना ही प्रत्येक व्यक्ति का धार्मिक कर्तव्य हैं। इस नियम को ना मानने वाले को दण्डित भी किया जाता हैं।

धार्मिक स्वीकृति : जाति व्यवस्था को धर्म ग्रन्थों द्वारा स्वीकृति दी गई। ऐसे नियम बनाए गए कि प्रत्येक व्यक्ति अपने से उच्च जाति का आदर करे एंव मानसिक रूप से स्वयं को उसके अधीन समझे। धार्मिक स्वीकृति की उसके वजह से जातियों के संस्तरण ने एक स्थायी रूप ग्रहण कर लिया।